लड़कों की ख़ुशहाली का शर्तिया नुस्ख़ा - ।

कौन कहता है लड़कियों के साथ भेदभाव हो रहा?

नासिरुद्दीन

© नासिरूद्दीन व सीएचएसजे, 2015

इस पुस्तक से जुड़े सभी अधिकार लेखक और प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं। इस पुस्तक का कोई भी हिस्सा किसी भी रूप में बिना लेखक और प्रकाशक की इजाज़त के इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।

सीमित और निजी वितरण के लिए।

कवर व अन्य रेखांकनः **गोपाल शून्य**

लेआउट डिजायनः **नासिरूद्दीन**

प्रकाशकः

सेंटर फॉर हेल्थ एंड सोशल जस्टिस (सीएचएसजे)

बेसमेंट, यंग वीमेंस हॉस्टल नम्बर-2, बैंक ऑफ इंडिया के नजदीक

एवेन्यू-21, जी ब्लॉक, साकेत, नई दिल्ली-110017, भारत

टेलीफोनः +91-11-26535203, +91-11-26511425, **फैक्सः** +91-11-26536041

ईमेल आईडीः chsj@chsj.org

वेबसाइटः www.chsj.org

मुद्रणः **दृष्टि प्रिंटर्स,** मोबाइलः 9810529858, 9810277025

लड़कों की ख़ुशहाली का शर्तिया नुस्ख़ा-1

कौन कहता है लड़कियों के साथ भेदभाव हो रहा?

चेतावनी: ये किताब लड़कों और मर्दों के लिए है

परिकल्पना व लेखन

नासिरूद्दीन

उन सभी लड़कियों के नाम जिनके सवालों ने

इस किताब को मुमकिन बनाया ...

उन लड़कों के नाम जो अपनी ज़िंदगी .

ख़ुशहाल बनाना चाहते हैं ...

अंदर के पन्नों पर

1. *यह किताब क्यों?*
2. *क्या हालात बदले हैं महाशय!*
3. *सवाल दर सवाल है, जवाब आपके पास है*
4. *लड़की के बिना कैसी अद्भुत होगी दुनिया!*
5. *द्वंद्व में लिपटी लड़कियों की ज़िंदगी*

यह किताब क्यों?

यह छोटी सी किताब, कथा है न उपन्यास। लेख हैं न शोध पत्र। नया विचार है न कोई खोज। यह एक ऐसा पिटारा है, जिसमें सब कुछ थोड़ा-थोड़ा है। इधर-उधर से जोड़ा हुआ है। कह सकते हैं, जोड़-जाड़कर खिचड़ी बनाने की कोशिश है।

सवाल यह है कि खिचड़ी क्यों पकाई जा रही है? वैसे खिचड़ी पकाना एक मुहावरा भी है। हम भी यहाँ इसके जरिए एक अच्छी खिचड़ी पकाने की कोशिश में है। स्वाद कैसा हुआ है, यह तो आप ही बता पाएँगे।

हमारे समाज के एक बड़े हिस्से को कन्या, लड़की या स्त्री कहते हैं। हमने-इन्हें अपने घर, परिवार और समाज में देखा होगा। इनकी हालत घर, परिवार, समाज, राज्य और देश में वैसी ही नहीं दिखती जैसी हम लड़कों, पुरुषों या कहें कि मर्दों की दिखती है। कुछ लोग कहते हैं कि गर्भधारण या पैदा होने से शुरू करें और मौत तक जाएँ तो पता चलता है कि स्त्री जाति के साथ वैसा ही सुलूक नहीं होता जैसा हम मर्दों के साथ होता है। ये कहते हैं, हम लड़के, मर्द

होने के नाते कई मायने में फ़ायदे में रहते हैं। हमें हमेशा हर चीज़ महिलाओं से बेहतर मिलती है।

आपको क्या लगता है, ऐसा है?

मुमकिन है, ऐसा हमारी नानी दादियों के जमाने में हुआ हो? है न। अब तो ज़माना बदल गया है। क्यों?

कुछ और लोग हैं। वे महिलाओं और लड़कियों के बारे में बताते हैं कि उनके साथ गैरबराबरी हो रही है। रीति-रिवाज, कानून सब में इन्हें कमतर आँका गया है। उनकी राय है कि ये गैरबराबरी दूर होनी चाहिए। उन्हें भी वैसा ही हक़ मिलना चाहिए जैसा हम मर्दों को मिला हुआ है।

सवाल है, ये विचार कहाँ से आ रहे हैं? कहीं कोई महिलाओं को भड़का तो नहीं रहा? कहीं बाहर से तो यह हवा नहीं चली आ रही है? क्या इनकी जड़ हमारे देश में भी कहीं है?

बात यह भी समझने की है आखिर, जिसे भेदभाव कहा जा रहा है, गैरबराबरी माना जा रहा है, वह हमारे आसपास कहाँ और किस रूप में दिख रहा है? कहीं है भी? या यों ही गैरबराबरी का शोर है?

कुछ लोगों का यह भी मानना है कि यह गैरबराबरी, सोचने-समझने के तंत्र पर भी असर डालती है। अगर चारदीवारी में जिंदगी घिरी हो तो सोचने के तंत्र पर बहुत असर पड़ता है। यह चारदीवारी जरूरी नहीं कि दिखे ही। यह ऐसी 'रेखा' है, जो है पर दिखती नहीं। यह 'रेखा' बहुत कुछ करने और सोचने में असमंजस, ऊहापोह, द्वंद्व पैदा करती है। *हाँ* और *न* के बीच ज़िंदगी झूलती रहती है।

ऐसा है या नहीं? आपको क्या लगता है?

ये लड़का-लड़की, महिला-पुरुष, बराबरी-गैरबराबरी, अधिकार- ये बाते हैं क्या? क्यों हैं? क्या मर्द होने के नाते हमें इन्हें जानना, समझना ज़रूरी है?

यह किताबनुमा टिप्पणियाँ ऐसे ही सफ़र पर चलने की एक कोशिश है। देखिए आपका सफ़र कैसा रहता है? कैसा गुज़रता है?

हाँ, सफ़र अच्छा लगे तो दूसरे साथी मर्दों को भी ज़रूर बताइएगा।

नासिरूद्दीन

क्या हालात बदले हैं महाशय!

जनाब, क्या हमें लगता है कि लड़कियों के हालात में बदलाव आया है? ज़्यादातर मर्दों को तो ऐसा लगता है। कुछ महिलाएँ भी ऐसा मानती हैं। वे बताते/बताती हैं कि हर शहर में पढ़ने वाली लड़कियों की तादाद देखिए। पटना, लखनऊ, रांची, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, मेरठ, गोरखपुर या दिल्ली के विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाली लड़कियाँ देखिए। ...देखिए तो अब लड़कियाँ हवाई जहाज़ चला रही हैं। ... चाँद पर जा रही हैं। ...तारे तोड़ रही हैं। ...बड़ी कम्पनियाँ चला रही हैं। ...यह कर रही हैं, वह कर रही हैं।

जी हाँ, बात तो सही है। काफी बदलाव आया है। कई मामलों में तो ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ दिख रहा है।

लड़कियाँ यह सब कर रही हैं। यानी पहले नहीं कर पा रही थीं या उन्हें करने नहीं दिया जा रहा था या करने का मौक़ा नहीं मिल रहा था।

लेकिन क्या यह इस बात निशानदेही है कि अब लड़कियों/महिलाओं को हमारे घर-परिवार और समाज में बराबरी का दर्ज़ा और हक़ मिल गया है? लड़का-लड़की में अब भेदभाव नहीं होता?

महाशय, कुछ जिज्ञासाएँ है।

- जिन कामयाबियों की बात हम कर रहे हैं, लड़कियाँ यह सब कैसे हासिल कर रही हैं?

कौन कहता है लड़कियों के साथ भेदभाव हो रहा?

- क्या घर-परिवार-समाज-देश की सभी लड़कियाँ इसी तरह कामयाबी की राह पर आगे बढ़ रही हैं?
- क्या सभी लड़कियों को ऐसा करने दिया जा रहा है?
- क्या सभी लड़कियों को मन का करने का मौक़ा मिल रहा है?

अरे महाशय, आप नाराज़ मत होइए। आपको क्या लग रहा है ये सवाल अमरीका से आएँ हैं। न न।

हाँ, मालूम है हम 21वीं सदी में रह रहे हैं। सभ्य समाज में रह रहे हैं। लोकतांत्रिक देश के बाशिंदा हैं। यहाँ सभी बराबर हैं। जाति, धर्म, भाषा, लिंग, धन के आधार पर यहाँ भेदभाव नहीं किया जा सकता। बस इसलिए कुछ सवाल दिमाग में कुलबुलाने लगे। हालाँकि कुछ लोग कहते हैं कि स्त्रियों की हालत अब भी ख़राब है। हाथ कंगन को आरसी क्या? आइए न, हम इस बात को यहीं ख़त्म कर लें। ठीक रहेगा न।

अमरीका-इंग्लैंड के बारे में हम यहाँ बात नहीं करेंगे। हम अपनी जड़ में तलाश करते हैं। इतिहास पर नज़र डालते हैं महाशय। देखते हैं भारत में क्या कभी स्त्रियों की पीड़ा को स्वर मिले भी हैं? या इरान-तुरान की बात ही यहाँ की जाती है?

जिस इतिहास के बारे में हमें पता है, उसके मुताबिक कई स्त्रियों ने गौतम बुद्ध से दीक्षा ली थी। इन स्त्रियों को थेरी कहा गया। इन्होंने स्त्री होने के नाते जो पीड़ा घर-परिवार में झेली, उसे लिखा। इस तरह यह देश की सबसे पुरानी स्त्री विमर्श की गाथा है।

महाशय आप सोच रहे होंगे, यह क्या बात हो रही है?

जनाब कहने का गरज बहुत सीधा-सपाट है। बुद्ध यानी ईसा से पाँच सौ साल पहले यानी अब से करीब ढाई हज़ार साल पहले की बात है। पढ़ेंगे तो आप ख़ुद ब ख़ुद अंदाज़ा लगा लेंगे बुद्ध के वक़्त महिलाओं की जो हालत थी, उससे वे आज कितनी आगे चली आई हैं? ठीक रहेगा न?

एक बौद्ध भिक्षुणी थीं मुक्ता। देखिए वह क्या कह रही हैं-

मैं अच्छी तरह मुक्त हो गई!

अच्छी विमुक्त हो गई हूँ!

तीन टेढ़ी चीज़ों से मैं अच्छी तरह विमुक्त हो गई हूँ!

ओखली से, मूसल से और अपने कुबड़े स्वामी से

मैं अच्छी तरह मुक्त हो गई!

(किंतु इससे भी एक और महान मुक्ति मुझे मिली)

मैं आज जरा और मरण से भी मुक्त हो गई!

मेरी संसार तृष्णा ही समाप्त हो गई!

एक और बौद्ध भिक्षुणी हैं, सुमंगलमाता। उनकी रचना है,

अहो! मैं मुक्त नारी!

मेरी मुक्ति कितनी धन्य है!

पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी, आज उससे मुक्त हुई!

मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे-छोटे (खाना पकाने के) बर्तन!

जिनके बीच में मैं मैली-कुचैली बैठती थी,

और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से तुच्छ समझता था,
जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था।।

अब उस जीवन की आसक्तियों
और मलों को मैंने छोड़ दिया!

मैं आज वृक्ष-मूलों में ध्यान करती हुई
जीवन-यापन करती हूँ!

अहो! मैं कितनी सुखी हूँ!
मैं कितने सुख से ध्यान करती हूँ।।

(थेरी गाथा में संकलित)

आप कहेंगे, जनाब कहाँ बुद्ध का वक़्त और कहाँ 21वीं सदी! न वह ज़माना रहा, न वह वक़्त। है न। ज़ाहिर है ढाई हज़ार साल बाद स्त्रियों की हालत भी वैसी नहीं रहनी चाहिए।

पर सिर्फ़ तीन सवाल हैं जनाब...

- ओखली, मूसल यानी घर के काम-काज में ही जीवन होम कर देने से क्या आज की महिलाएँ मुक्त हो गईं?
- क्या 21वीं सदी के पतियों ने उसे अपने सामान से कमतर समझना ख़त्म कर दिया है?
- क्या आज की सभी स्त्री ''अहो मैं कितनी सुखी हूँ''- का गान करती हैं?

जवाब का इंतज़ार है जनाब। मुझे नहीं देना चाहते। कोई बात नहीं ख़ुद को तो जवाब देंगे? तो अपने को ही दीजिए।

महाशय, बुद्ध कुछ ज़्यादा पुराने हैं। उन्हें छोड़ा जाए! उनके बाद के ज़माने की बात करते हैं। एक बड़ा रोचक गीत है।

''जही दिन हे अम्मा, भइया के जनमवाँ

सोने छुरी कटइले नार हो

जही दिन अहे अम्मा, खुरपी ने भेंटे

झिटकी कटइले नार हो''

(हे माँ, जब मेरे भाई का जन्म हुआ था तब तुमने सोने की छुरी से नार काटा। जिस दिन मेरा जन्म हुआ हे मेरी माँ, उस दिन तुमने सबसे पहले खुरपी तलाश करवाई। जब खुरपी नहीं मिली तो तुमने झिटक कर नार निकाल दिया।)

एक और देखिए-

''...जो मैं जानती धिया मोरे होइहें

खाती मैं मिर्चा जल्लाद

मिर्चा के झार धिया मरि जाति

बिच्छी साजरिया उतीक डरती

हरि जी से रहती रिसाय''

(अगर मैं यह जानती कि मेरे कोख से बेटी जन्म लेने वाली है तो मैं मिर्चा खा लेती ताकि उसके झार से बेटी की मौत हो जाती। यही नहीं अगर मुझे ऐसा भान होता तो मैं अपने साजन का गुस्सा सह लेती लेकिन उनके पास नहीं जाती।)

जनाब ये गीत पढ़ कर भी आपको लग रहा होगा कि यह भी किस ज़माने की बात की जा रही है। है न!

अगर आपको ऐसा लग रहा है तो बहुत अच्छी बात है लेकिन कुछ छोटे-छोटे सवाल हैं। जवाब देंगे न!

- क्या हर घर-ख़ानदान में बेटियों के पैदा होने पर अब ख़ुशी मनाई जाने लगी है?
- क्या बेटी पैदा होने पर अब कोई माँ-बाप, दादा-दादी दुखी नहीं होता?
- क्या सभी बेटियों की दुआएँ माँग रहे हैं?
- क्या बेटी पैदा होने के लिए मन्नतें माँगी जाने लगी हैं?
- क्या अब कोई भी बेटी को पैदा होने से पहले या बाद में *गायब* नहीं कर रहा?

महाशय जवाब दीजिए न। मुझे नहीं देना चाहते। कोई बात नहीं ख़ुद को तो जवाब देंगे? चलिए अपने को ही दीजिए।

चलिए एक और चीज़ पढ़ते हैं। नाराज़ तो नहीं हो रहे। ख़ैर। देखिए क्या लिखा है-

> *''...शादी करने से अपने अख़त्यारात दूसरे के अख़त्यार में देने पड़ते हैं। जब आपने जिस्मी अख़त्यार दूसरे को दिए तब दुनिया में अपनी क्या चीज़ बाक़ी रही? अगर इस दुनिया में कुछ ख़ुशी है तो उन्हीं को है जो अपने तईं आजादी रखते हैं। हिन्दुस्तानी औरतों को तो आज़ादी किसी हालत में नहीं हो सकती। बाप, भाई,*

बेटा, रिश्तेदार-सभी हुकूमत रखते हैं। मगर जिस क़द्र ख़ाविंद ज़ुल्म करता है उतना कोई नहीं करता। लौंडी तो यह सारी उम्र सब ही की रहती है पर शादी करने से तो बिल्कुल ज़रख़रीद हो जाती है। इस दुनिया में चाहे बादशाहत की नियामत मिले और आज़ादी न हो, नर्क के बराबर है।...

स्त्री पुरुष का रिश्ता रूहानी है जिस्मानी नहीं है। रूह का रिश्ता प्रीत से है-जब तक स्त्री पुरुष में प्रीत न हो विवाह नहीं। ... प्रीत समान की समान से होती है। ... क्या बगैर पसंद किए हुए शादी बिच्छू के जहर से कुछ कम दुःख देती है?''

जनाब ये लाइनें एक अज्ञात हिन्दू औरत की लिखी किताब 'सीमन्तनी उपदेश' से ली गई है। यह पुस्तक सन् 1882 में छपी थी। यानी 133 साल पहले की बात है। ज़ाहिर है इतने सालों में भी दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई हैं। ख़ुद महिलाएँ कहाँ से कहाँ पहुँच गईं। है न!

पर कुछ सवाल फिर भी ज़हन में कौंध रहे।

- क्या आज 21वीं सदी में महिलाओं के लिए शादियों के मायने बदल गए हैं?
- क्या पतियों या शौहरों ने उन पर और उनके जिस्म पर अपना अधिकार रखना छोड़ दिया?
- क्या पतियों या ससुरालियों के ज़ुल्म की घटनाएँ अब बीते ज़माने की बात हो गई है?
- क्या लड़कियाँ या महिलाएँ हर फ़ैसले लेने के लिए आज़ाद हो गई हैं?
- क्या स्त्री-पुरुष अब बिना प्रीत के विवाह नहीं करते?
- क्या शादी का रिश्ता अब रूह का रिश्ता है?
- क्या शादी के बाद भी लड़कियाँ, अब वैसे ही आज़ाद रहती हैं जैसे पहले रहा करती थीं?

महाशय आप बोलिए न। मुझसे नहीं बोलन चाहते। ज्ञान साझा नहीं करना चाहते तो कोई बात नहीं ख़ुद को तो जवाब देंगे? तो अपने को ही दीजिए।

जनाब, बुरा मत मानिएगा। थोड़ी ज़हमत और उठाइएगा। ज़रा इन चंद लाइनों पर भी ग़ौर फ़रमाइए।

''... अक़्ल की ताक़त में औरतें किसी तरह मर्दों से कम नहीं हैं और कोई इल्मी मसला यानी पढ़ाई-लिखाई आज तक ऐसा साबित नहीं हुआ है कि वहाँ तक मर्दों के ज़हन की पहुँच होती हो और औरतों की न होती हो। बल्कि जहाँ तक हमारा और हमारे चंद अहबाब का तज़ुर्बा लड़कियों की तालीम के बारे में है, इससे मालूम होता है कि बनिस्बत लड़कों के लड़कियाँ ज़्यादा ज़हीन और बुद्धिमान और रोशन ख़्याल होती हैं। जिन लड़कियों ने मदरसा में तालीम नहीं पाई और अपने घरों में पढ़ना-

लिखना सीखा है उनका क़िस्सा सुनने से हमें बेइंतहा ताज्जुब हुआ। अक्सर सूरतों में यही सुना कि उनकी कोई बाक़ायदा तालीम नहीं हुई न कोई ख़ास शख़्स उनकी तालीम के लिए मख़सूस हुआ बल्कि दोचार हरफ़ बहन से, दो चार हरफ़ भाई से, दो चार हरफ़ वालिदा से उठते-बैठते सीखती रहीं। भाई-बहनों को लिखते देख कर ख़ुद उनकी नक़्ल करने लगीं। रफ़ता-रफ़ता ख़ुद ही इस क़दर लिखना-पढ़ना आ गया कि कई साल तक के लिए भाइयों की तालीम की खास टीचर बन गईं।

हमने कभी किसी लड़के को इस तरह अधूरी तालीम से कोई फ़ायदा हासिल करते नहीं देखा। जिस वालदैन को यकसाँ उम्र का लड़का और लड़की पढ़ाने का इत्तेफ़ाक़ हुआ होगा उसे साफ़ रोशन हो गया होगा कि लड़के अमूमन अक़्ल के भद्दे और कम तेज़ होते हैं और लड़कियों के हमराह हमेशा फ़िसड्डी रहते हैं।''

जानते हैं ये कौन साहब हैं। मौलवी हैं। देवबंदी हैं। मौलवी सैयद मुमताज़ अली। 119 साल पहले 1896 में उन्होंने यह लिखा था। इनकी बात को भी काफ़ी लम्बा वक़्त गुज़र गया। है न! तो इनकी बात अब इतिहास की बात हो गई होगी?

तो ये बातें बेमानी हो गई होंगी–

- लड़कियाँ अक़्ल में कमज़ोर होती हैं ?
- लड़कियाँ वह सब नहीं कर सकती हैं, जो लड़के कर सकते हैं ?
- लड़कियाँ अक़्ल में लड़कों से तेज़ नहीं हैं ?
- लड़कियों के मुक़ाबले लड़के पढ़ाई में कमज़ोर नहीं होते हैं ?

महाशय क्या सोच रहे हैं ? चलिए थोड़ा ग़ौर कीजिए और अपने को ही जवाब दीजिए।

देखिए, तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती भी कुछ कह रहे हैं। भारती की रचनाएं 20वीं सदी की शुरुआत की हैं। सौ साल पहले की मान सकते हैं। उनकी एक कविता का हिन्दी अनुवाद कुछ इस तरह का है–

''सुनो, मैं घोषणा करता हूँ नए क़ानून की-

औरत आज़ाद है।

सुनो ध्यान से, यह क़ानून क्या है:

अगर दुनिया के सभी जीव देवता माने जाते हैं।

कौन कहता है लड़कियों के साथ भेदभाव हो रहा?

तो पत्नी देवी क्यों नहीं, बोलो मूर्खों?

तुम उड़ने-उड़ाने की शेख़ी बघारोगे,

आज़ादी व दया-करुणा का नाम लेकर

आनंद विह्वल हो जाओगे

आज़ादी से वंचित रखोगे

तो पृथ्वी पर कैसा जीवन रह जाएगा।''

भारती जी का एक लेख है, ''पतिव्रता''। उसका एक अंश है-

> *''...यदि पुरुष चाहता है कि स्त्री उससे सच्चा प्रेम करे तो पुरुष को भी स्त्री के प्रति अटूट श्रद्धा रखनी चाहिए। भक्ति के द्वारा ही भक्ति का आविर्भाव होगा। एक दूसरी आत्मा, भय से त्रस्त होकर हमारे वश में रहेगी ऐसा मानने वाला चाहे राजा हो, गुरु हो या पुरुष हो, वह निरा मूर्ख है। उसकी इच्छा पूरी न होगी। आतंकित मानव का प्राण चाहे प्रकट रूप में गुलाम की भांति अभिनय करे, हृदय के अंदर द्रोह की भावना को वह अवश्य छिपाता रहेगा।*
>
> *भयवश होकर प्रेम खिलता नहीं।''*

तो जनाब भारती के शब्दों में छिपी भावना क्या कहीं से महिलाओं की आज की हालत से जुड़ती है? सोचिए न यह बात सौ साल पहले लिखी गई थी। 20वीं सदी में। हम रह रहे हैं 21वीं सदी में। सबसे आधुनिक, सबसे सभ्य और सबसे वैज्ञानिक युग में।

सवाल इसलिए तो उठ रहे हैं-

- क्या जिस आज़ादी की बात भारती कर रहे हैं, वह आज़ादी आज की स्त्रियों को हम मर्दों ने दे दी है?
- क्या आज का मर्द, किसी स्त्री या पत्नी पर अटूट श्रद्धा रखता है?
- क्या आज की बेटी, लड़की, स्त्री, पत्नी भय से मुक्त हो चुकी है?

महाशय, क्या जवाब है आपका। मुझे नहीं देना चाहते। कोई बात नहीं ख़ुद को तो जवाब देंगे? चलिए अपने को ही दीजिए।

इस मुल्क में प्रगतिशील लेखकों के आंदोलन की बुनियाद रखने वाले लोगों में एक थी

रशीद जहाँ। यह बात 20वीं सदी के तीसरे दशक की है। उनकी एक कहानी है 'पर्दे के पीछे'। ज़रा देखिए उस कहानी की महिला पात्र अपनी हालत कैसे बयान कर रही है–

''मियाँ, बच्चे, घर सब कुछ है। जवानी? कौन मुझे जवान कहेगा, सत्तर बरस की बुढ़िया मालूम होती हूँ। रोज़-रोज़ की बीमारी, ...हर साल बच्चे जनने। हाँ, मुझसे ज़्यादा कौन ख़ुशक़िस्मत होगा। ...डॉक्टरनी ने मुझसे मेरी उम्र पूछी। मैंने कहा, बत्तीस साल। ...मैंने कहा, मिस साहब आप मुस्कराती क्या हैं, आपको मालूम हो कि सतरह साल की उम्र में मेरी शादी हुई थी। और जब से हर साल मेरे यहाँ बच्चा होता है। सिवाय एक तो जब मेरे मियाँ साल भर को विलायत गये हुए थे और दूसरे जब मेरे-उनके लड़ाई हो गई थी।

...न रात देखें न दिन बस हर वक़्त बीवी चाहिए। और बीवी पर ही क्या है, इधर-उधर जाने में कौन से कम हैं!

..धमकी यह है कि दूध पिलाओगी तो मैं और ब्याह कर लूँगा। मुझे हर वक्त औरत चाहिए। मैं इतना सबर नहीं कर सकता कि तुम बच्चों की टिल्लेनवीसी करो..

एक दूसरी पात्र कहती है-..खुदा ऐसे मर्दों से बचाये। जानवर भी तो कुछ ख़ौफ़ करते हैं। यह तो जानवरों से भी बदतर हो गये। ऐसे मर्दों के पाले तो कोई न पड़े। ...''

यह बात एक रईस घर की है। क्या इसका मतलब है कि यह बाक़ी महिलाओं पर लागू नहीं होता और आज की हिन्दू-मुसलमान किसी स्त्री पर लागू नहीं होगा? क्यों महाशय? लेकिन सवाल तो यहाँ भी उठ ही जा रहे हैं महाशय-

- क्या अब मर्दों ने चाहे वे मुसलमान हों या हिन्दू, बीवी को सिर्फ अपने जिस्मानी भूख को शांत करने का ज़रिया समझना छोड़ दिया है?
- क्या आज के मर्द, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, बीवियों की *हाँ* या *न* की कद्र करने लगे हैं?
- क्या आज के मर्द, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, अगर बीवी या पार्टनर ने *न* कर दी तो उसके साथ किसी तरह की जबरदस्ती नहीं करते?
- चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, क्या आज की हर महिला ये फैसला ख़ुद करने लगी है कि उसे कितने बच्चे होने चाहिए?

महाशय, जवाब दीजिए न। इसका जवाब नहीं सूझ रहा? तो ऐसा कीजिए किसी अनुभवी साथी या मर्द रिश्तेदार से पूछ डालिए न। क्या? मुझे नहीं बताएँगे? कोई बात नहीं, ख़ुद को ही जवाब ही दे दीजिए।

चलिए एक और चीज़ पढ़ते हैं। महादेवी वर्मा का नाम आपने सुना होगा और स्कूल में इनकी कविताएँ भी पढ़ी होंगी। सन् 1942 में इनकी एक किताब आई 'शृंखला की कड़ियाँ'। अभी आज़ादी नहीं मिली थी और आज़ादी के लिए महिला-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ सभी मिलकर लड़ रहे थे। सन् 1942 में ही अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ था। ज़ाहिर है, आज़ादी के बाद नए मुल्क़ के लिए ढेरों ख़वाब भी पल रहे होंगे। इस ख़वाब में लड़कियों के भी ख़्वाब होंगे। ख़ैर... महादेवी जी की इस पुस्तक में शामिल एक लेख के चंद अंश देखिए-

''... (स्त्री के) जीवन का प्रथम लक्ष्य पत्नीत्व और अंतिम मातृत्व समझा जाता रहा, अतः उसके जीवन का एक ही मार्ग और आजीविका का एक ही साधन निश्चित था। यदि हम कटु सत्य सह सकें तो लज्जा के साथ स्वीकार करना होगा कि समाज ने स्त्री को जीविकोपार्जन का साधन निकृष्टतम दिया है। उसे पुरुष के वैभव की प्रदर्शनी तथा मनोरंजन का साधन बनकर ही जीना पड़ता है, केवल व्यक्ति और नागरिक के रूप में उसके जीवन का कोई मूल्य नहीं आँका जाता।...

जैसे ही कन्या का जन्म हुआ, माता-पिता का ध्यान सबसे पहले उसके विवाह की कठिनाइयों की ओर गया। ...

... स्त्री के विकास की चरमसीमा उसके मातृत्व में हो सकती है, परन्तु यह कर्तव्य उसे अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों को तोल कर स्वेच्छा से स्वीकार करना चाहिए, परवश होकर नहीं। कोई अन्य मार्ग न होने पर बाध्य होकर जो स्वीकार किया जाता है, वह कर्तव्य नहीं कहा जा सकता। यदि उनके जन्म के साथ विवाह की चिंता न कर उनके विकास के साधनों की चिंता की जावे, उनके लिए रुचि के अनुसार कला, उद्योग-धंधे तथा शिक्षा के द्वार खुले हों, जो उन्हें स्वावलम्बी बना सकें और तब अपनी शक्ति और इच्छा को समझकर यदि वे जीवनसंगी चुन सकें तो विवाह उनके लिए तीर्थ होगा, जहाँ वे अपनी संकीर्णता मिटा सकेंगी, व्यक्तिगत स्वार्थ को बहा सकेंगी और उनके जीवन उज्जवल से उज्जवलतर हो सकेगा। इस समय उनके त्याग पर अभिमान करना वैसा ही उपहासस्पद है, जैसा चिड़िया को पिंजरे में बंद करके उसके, परवशता से स्वीकृत जीवन-उत्सर्ग का गुणगान।...

... (पति होने के इच्छुक युवक) प्रायः पत्नी के भरण-पोषण का भार ग्रहण करने के पहले भावी श्वसुर से कन्या को जन्म देने का भारी से भारी कर वसूल करना चाहते हैं।... सभी अपने आपको ऊँची से ऊँची बोली के लिए नीलाम चढ़ाए हुए हैं। प्रश्न उठता है कि क्या यह क्रय-विक्रय, यह व्यवसाय स्त्री के जीवन का पवित्रतम बंधन कहा जा सकेगा? क्या इन्हीं पुरुषार्थ और पराक्रमहीन परावलम्बी पतियों से वह सौभाग्यवती बन सकेगी?...

... हम स्त्रियों के विवाह की चिंता इसलिए नहीं करते कि देश या जाति में सुयोग्य माताओं और पत्नियों का अभाव हो जाएगा, वरन इसलिए कि उनकी आजीविका का हम और कोई सुलभ साधन नहीं सोच पाते।...

... भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। ...

प्रत्येक भारतीय पुरुष चाहे वह जितना सुशिक्षित हो, अपने पुराने संस्कारों से इतना दूर नहीं हो सका है कि अपनी पत्नी को अपनी प्रदर्शनी न समझे। उसकी विद्या, उसकी बुद्धि, उसका कला कौशल और उसका सब उसकी आत्मश्लाघा के साधन मात्र हैं। जब कभी वह सजीव प्रदर्शन की प्रतिमा अपना भिन्न व्यक्तित्व व्यक्त करना चाहती है, अपनी भिन्न रुचि या भिन्न विचार प्रकट करती है, तो वह पहले क्षुब्ध, फिर असंतुष्ट हुए बिना नहीं रहता।''

ये सत्तर साल पहले की बात है। इस बीच आज़ादी मिली। नया मुल्क़ अस्तित्व में आया। नया विधान बना। संविधान ने गारंटी की- किसी के साथ इस आधार पर भेदभाव नहीं होगा कि वह लड़का है या लड़की। ... इसके बाद पाँच पीढ़ियाँ तो निकल ही गईं होंगी। माना तो यही जाता

है कि हर अगली पीढ़ी, अपनी पिछली पीढ़ी से सोच-विचार में आगे रहती है। नई पीढ़ी कई पुराने मूल्य छोड़ती और तोड़ती हैं। नए मूल्य गढ़ती है। है न।

हालाँकि यहाँ भी कुछ सवाल ज़हन में उठ रहे हैं। जैसे-

- महादेवी जी ने स्त्रियों की दशा के बारे में जो बात सत्तर साल पहले लिखी, क्या वे बातें आज की लड़कियों, महिलाओं और मर्दों पर लागू नहीं होतीं?
- क्या माँ-बाप बेटी की शादी की अब चिंता नहीं करते?
- क्या अब सारे माँ-बाप शादी से इतर बेटी की पढ़ाई, कॅरियर ... की चिंता करते हैं?
- क्या लड़के, अब लड़की वाले से मूल्य यानी दहेज नहीं ले रहे?
- क्या शादी-शुदा लड़की का मन और तन अब आज़ाद रहता है?
- क्या पतियों ने स्त्री के मन और तन पर अपना कब्ज़ा त्याग दिया है?
- क्या स्त्रियाँ अपने हिसाब और मन से अपना जीवनसंगी चुन रही हैं? क्या विवाह उनके लिए अब तीर्थ जैसा हो गया है?
- क्या अब पढ़ी-लिखी पत्नी इसलिए चाहिए ताकि वह सोच-समझ में बराबर हो?
- क्या घर-परिवार के फ़ैसलों में स्त्रियों की अब बराबर की दख़लंदाज़ी होती है?

महाशय बोलिए न। मुझे जवाब नहीं देना चाहते। कोई बात नहीं ख़ुद को तो जवाब देंगे? अपने को ही दीजिए।

महाशय अगर आपका जवाब है कि आज की तारीख में ये सारी बातें और सवाल, बेमानी और बक़वास हैं तो यक़ीन जानिए **हमने आज़ादी के बाद बहुत सुंदर संसार रचा है। दुनिया के सुंदरतम संसारों में एक। है न!**

मगर ज़मीनी हक़ीक़त कुछ और है महाशय तो हमें सोचना होगा। उन सवालों के जवाब जो आपने ख़ुद को दिए, उन्हें सबके साथ खंगालना होगा। सवाल है कि लड़कियाँ अगर हर जगह पाँव जमा रही हैं तो क्या समाज यानी मर्दिया समाज लड़कियों के बारे में अपने नज़रिए में बदलाव लाया है।

असल में तो हालात तो तब बदलेंगे न महाशय जब नज़रिए में बदलाव आएगा। यह तो ऊपरी बदलाव है और महाशय। यह बदलाव भी उतना है जितना मर्दिया निज़ाम को भाता है।

अब तो आप जानते ही हैं जनाब कि लड़कियों को बराबरी की जद्दोजेहद कब से चल रही। वैसे आपको क्या, ढेरों लोगों को लगता है कि यह हवा कहीं पश्चिम देश की है। यानी यह ख़्याल पश्चिम मुल्क़ से आया कि लड़कियाँ भी लड़कों की तरह ही इंसान हैं और बतौर इंसान उसे वे सारे हक़ मिलने चाहिए जो लड़कों को मिलते हैं। लेकिन ध्यान रखिएगा कि न तो बुद्ध की थेरियाँ, न ही बिहार और यूपी के लोकगीतों की रचियता, न ही सीमन्तनी उपदेश की लेखिका और न भारती, महादेवी पश्चिमी मुल्क के बाशिंदे हैं।

सवाल दर सवाल है
जवाब आपके पास है

उठते-बैठते, राह चलते, छत ताकते या यों ही अगर कभी अचानक किसी लड़की का चेहरा सामने आ जाए या कभी किसी जान-पहचान की लड़की के बारे में सालों बाद कोई खबर मिले तो कुछ सवाल बिजली की मानिंद कौंध जाते हैं। कभी किसी की आँखों से आँखें टकराती हैं तो कुछ सवाल उठते हैं। कई बार, ये सवाल कई दिनों तक दिमाग़ में फँसे रहते हैं। कुछ को फँसे तो सालों हो जाते हैं। कुछ के जवाब मिल जाते हैं। कुछ सवाल बिना जवाब घुमड़ते रहते हैं। उन्हीं सवालों को यहाँ साझा किया जा रहा है। शायद हम-आप मिलकर इन्हें सुलझाने में कामयाब हों।

कौन कहता है कि हम-आप जानकार नहीं हैं? हम समाज और दुनिया को नहीं समझते हैं? क्या हम मर्दों को ज्ञान देने की ज़रूरत है? क़तई नहीं।

मुझे लगता है हम सब के पास ख़ासकर हम मर्दों के पास ही इन सवालों का जवाब है। बस, थोड़ा दिमाग़ घुमाने और लगाने की ज़रूरत है। तो लगाते हैं दिमाग़। हो सकता है, हमारे जवाब से ही बड़ा जवाब निकले। फिर कई सवाल हमेशा के लिए ख़त्म हो जाएँ। और जानते हैं... जब ऐसा होगा तो इतिहास में हमारा नाम ज़रूर दर्ज़ होगा। यह ज़रूर लिखा जाएगा कि इक्कीसवीं सदी के भारत में मर्दों की ऐसी पीढ़ी पैदा हुई, जिसने सदियों से चले आ रहे सवालों को हल कर लिया। कितनी बड़ी बात होगी? ज़रा सोचिए!

तो आइए सवालों को देखें।

रोमशा, लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामायनी, यमी, अपाला, घोषा वाक्, सूर्या, शाश्वती, ममता- ये महज़ नाम नहीं हैं। ये महिला ऋषि हैं। इतिहासकार बताते हैं, ऋग्वेद में इनकी रचनाएँ शामिल हैं। यह बात कई हजार साल पहले की है।

- *फिर भी आज महिलाओं को अपनी काबिलीयत साबित क्यों करनी पड़ती है?*
- *क्यों आज भी महिलाओं के बुद्धिमान होने पर शक़ की उँगली उठी रहती है?*
- *क्यों आज भी महिलाएँ पुरोहित नहीं दिखतीं?*
- *क्यों आज भी महिलाओं को पूजा कराने के लिए नहीं बुलाया जाता?*

***कहाँ** चली जाती हैं*
हाईस्कूल, बारहवीं की वे टॉपर
सीबीएसई में हर साल रिकॉर्ड बनाने वालीं
आईसीएसई में हर साल रिकॉर्ड तोड़ने वालीं
कहाँ गुम हो जाती हैं
लड़कों को हर साल पछाड़ने वालीं?

***कहीं** गुम तो नहीं कर दी जातीं हैं ये टॉपर?*

दसवीं-बारहवीं में ख़म ठोककर अपने दिमाग़ का लोहा मनवाती हैं लड़कियाँ
पटना, गोरखपुर, भोपाल, लखनऊ से दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे नामी-गिरामी यूनिवर्सिटी के नामी कॉलेजों में टिड्डे दल की तरह पहुँचती हैं लड़कियाँ
ये टिड्डा दल इंजीनियरिंग, मेडिकल, आईआइटी, आईआईआईटी, एनआईटी, आईआईएम, आईएलआई में क्यों नहीं दिखता?

अगर वे पढ़ती हैं
टॉप करती हैं
लड़कों को पछाड़ती हैं...
तो प्रोफेशनल कोर्स में क्यों पिछड़ जाती हैं?

***या प्रोफेशनल** कोर्स की रेस में भी कहीं लड़कों से जीत न जाएँ, इस डर से उन्हें शामिल ही नहीं होने दिया जाता?*

लड़कियाँ इंजीनियर बन कर बाहर कैसे काम करेंगी?

लड़कियाँ वकालत पढ़कर कैसे तरह-तरह के मुवक्किलों से मिलेंगी?
हड्डी का डॉक्टर बन कैसे छुएँगी हर के हाथ-पैर-पीठ?
कैसे करेंगी देर रात तक काम?
शुरू होने से पहले ही इतने सवाल, कहीं इसीलिए तो नहीं दिखतीं प्रोफेशनल कोर्स में लड़कियाँ?

***वे भी** दिमाग़दार हैं। हैं न?* कई तो लड़कों से ज्यादा दिमाग़दार। हैं न।
तब ही तो जहाँ तक दौड़ने दिया जाता है...
जहां तक मौक़ा मिलता है...
जहाँ तक मौक़ा छीन सकती हैं...
जहाँ तक मौक़ा हासिल कर सकती हैं...
वे आगे बढ़ती जाती हैं...
मर्द नामधारियों को पछाड़ती जाती हैं ...
झंडे गाड़ती चली जाती हैं
दसवीं-बारहवीं-पंद्रहवीं में बाज़ी मारती हैं...
तो महाशय
दफ्तरों में कम नहीं काफी कम क्यों दिखाई देती हैं?
नौकरियों के बाज़ार में कहाँ गुम हो जाती हैं?
या कहीं गुम तो नहीं कर दी जाती हैं?

लड़के गिल्ली-डंडा खेलते हैं
लड़कियाँ भी गिल्ली डंडा खेलती हैं
लड़के कबड्डी खेलते हैं
लड़कियाँ भी कबड्डी खेलती हैं
लड़के क्रिकेट खेलते हैं
लड़कियाँ भी क्रिकेट खेलती है
लड़के फुटबॉल खेलते हैं
लड़कियाँ भी फुटबॉल खेलती हैं
लड़के हॉकी खेलते हैं
लड़कियाँ भी हॉकी खेलती हैं
लड़के बैडमिंटन खेलते हैं
लड़कियाँ भी बैडमिंटन खेलती हैं
लड़के वॉलीबॉल खेलते हैं
लड़कियाँ भी वॉलीबॉल खेलती हैं
तो यहाँ-वहाँ मैदानों-पार्कों में लड़कियाँ क्यों नहीं दिखतीं? लड़कियाँ फिर क्यों नहीं खेलतीं गलियों-सड़कों पर क्रिकेट, फुटबॉल, हॉकी, बैडमिंटन, वॉलीबॉल, कबड्डी, गुल्ली-डंडा?

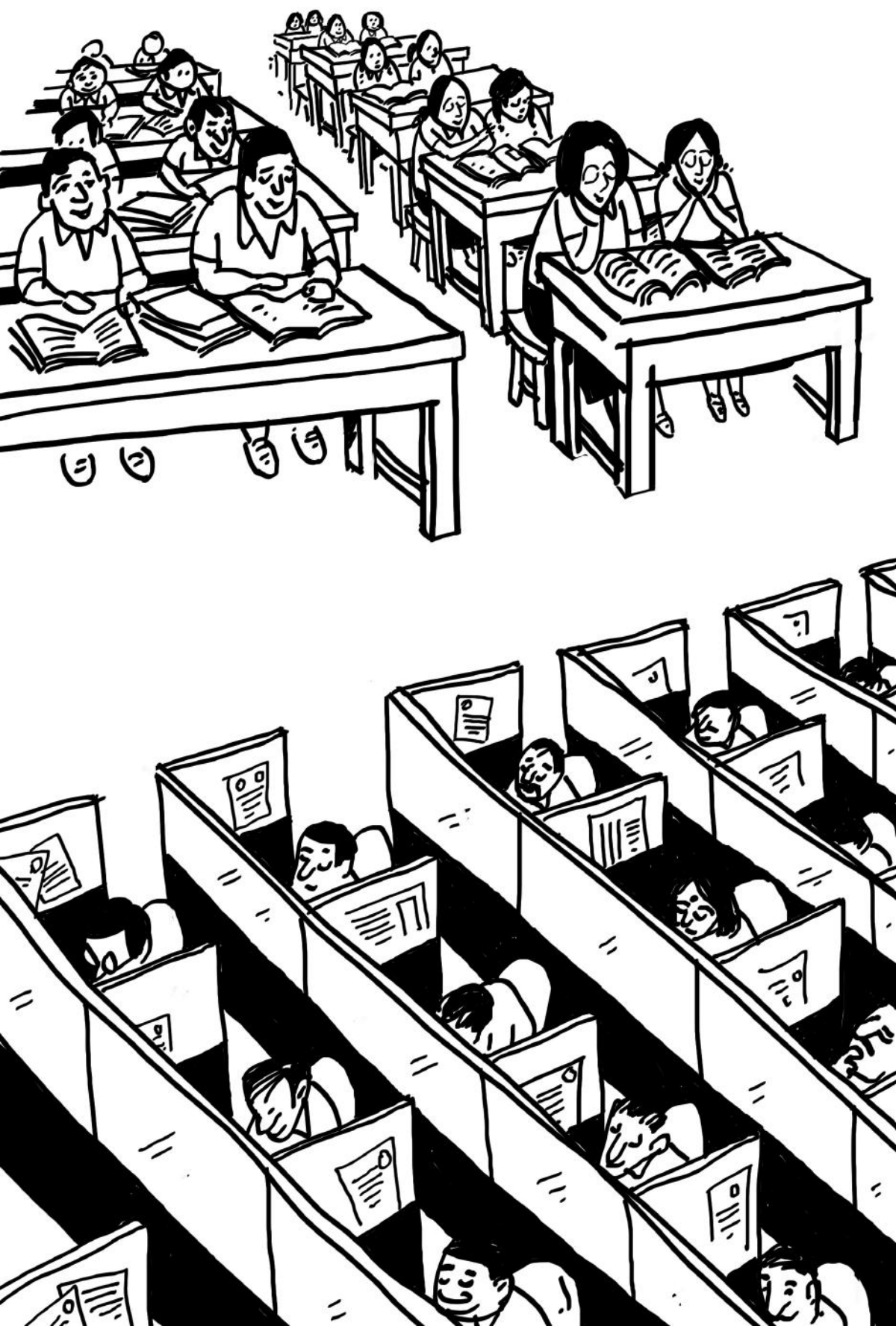

महाशय, शादी के बाद लड़कियाँ अपने नाम के साथ लगा बचपन का उपनाम छोड़कर पति का उपनाम क्यों ले लेती हैं? यानी रेहाना जमाल, परवेज़ खान से शादी के बाद रेहाना परवेज़ या रेहाना ख़ान क्यों हो जाती हैं? गौरी पाण्डे शादी के बाद गौरी राजेश या तिवारी क्यों हो जाती हैं?

जनाब, *शादी के बाद लड़की ही लड़के के घर क्यों आती है?*

जनाब, *लड़के के ऊपर ही घर का ख़र्च चलाने का ज़िम्मा क्यों होता है?*

हॉलीवुड हो बॉलीवुड या कोई और वुड... उसका हीरो कैसा होता है? एक मर्द, दूसरे मर्द से एक लड़की को पाने के लिए, आपस में लडते हैं। दोनों दावा करते हैं कि वे उस लड़की से प्रेम करते हैं। प्रेम के लिए ख़ून बहाते हैं। ख़ून करते हैं। कपड़े फाड़ 'सिक्स पैक्स' दिखाते हैं। अकड़ कर चलते हैं। हाथ में हथियार लिए अपने को 'असली मर्द' बताते हैं। हीरो, विलेन का ख़ून कर देता है।

अब ज़रा आँख बंद कर ग़ौर कीजिए... *अपने आस-पास नज़र डालिए और ऐसे दस जोड़ों को तलाशिए, जहाँ 'मर्दानगी' के ऐसे इज़हार के बाद प्यार मिला है? सिर्फ दस ऐसी लड़कियाँ तलाशिए, जिन्होंने असली ज़िंदगी में ऐसे 'मर्द' लड़कों को दौड़ कर गले लगा लिया है? सिर्फ़ दस का सवाल है जनाब! दस ज़्यादा है तो चलिए पाँच नाम ही बताइए?*
मुझे नहीं बताएँगे, कोई बात नहीं अपने दिल को ही बता दें।

साहिल और शबनम दोस्त हैं
दोनों पढ़ने में तेज़
दोस्ती प्यार में बदली
शबनम पटना में नौकरी कर रही है
साहिल जयपुर में काम कर रहा है
दोनों इंजीनियर हैं
प्यार ने तय किया कि अब ज़िंदगी भर के लिए हमसफ़र बन जाएं
हमसफ़र बन गए
अब सवाल उठा कि दोनों अलग-अलग जगह कैसे रहेंगे
तो सवाल है
किसे नौकरी छोड़कर कहाँ जाना चाहिए?
घर-परिवार वाले साहिल को पटना जाने की सलाह देंगे या शबनम को जयपुर?
साहिल न आना चाहे तो क्या शबनम को जाना चाहिए?
अगर आपसे पूछ लिया तो आपका जवाब क्या होगा?
आप क्या सलाह देने जा रहे हैं?

कौन कहता है लड़कियों के साथ भेदभाव हो रहा?

लड़के *और लड़कियाँ साथ क्यों नहीं खेलते?*

बढ़ती लड़कियाँ *शाम में छत पर और लड़के मैदान-पार्क में क्यों नज़र आते हैं?*

लड़के कहीं भी खेल सकते हैं...
यहाँ-वहाँ, जहाँ-तहाँ
लेकिन लड़कियाँ यहाँ-वहाँ, जहाँ-तहाँ
खेलते हुए कहीं भी क्यों नहीं दिखाई देतीं?
वे यहाँ-वहाँ, जहाँ-तहाँ क्यों नहीं खेल सकतीं?
बताइए न जनाब!

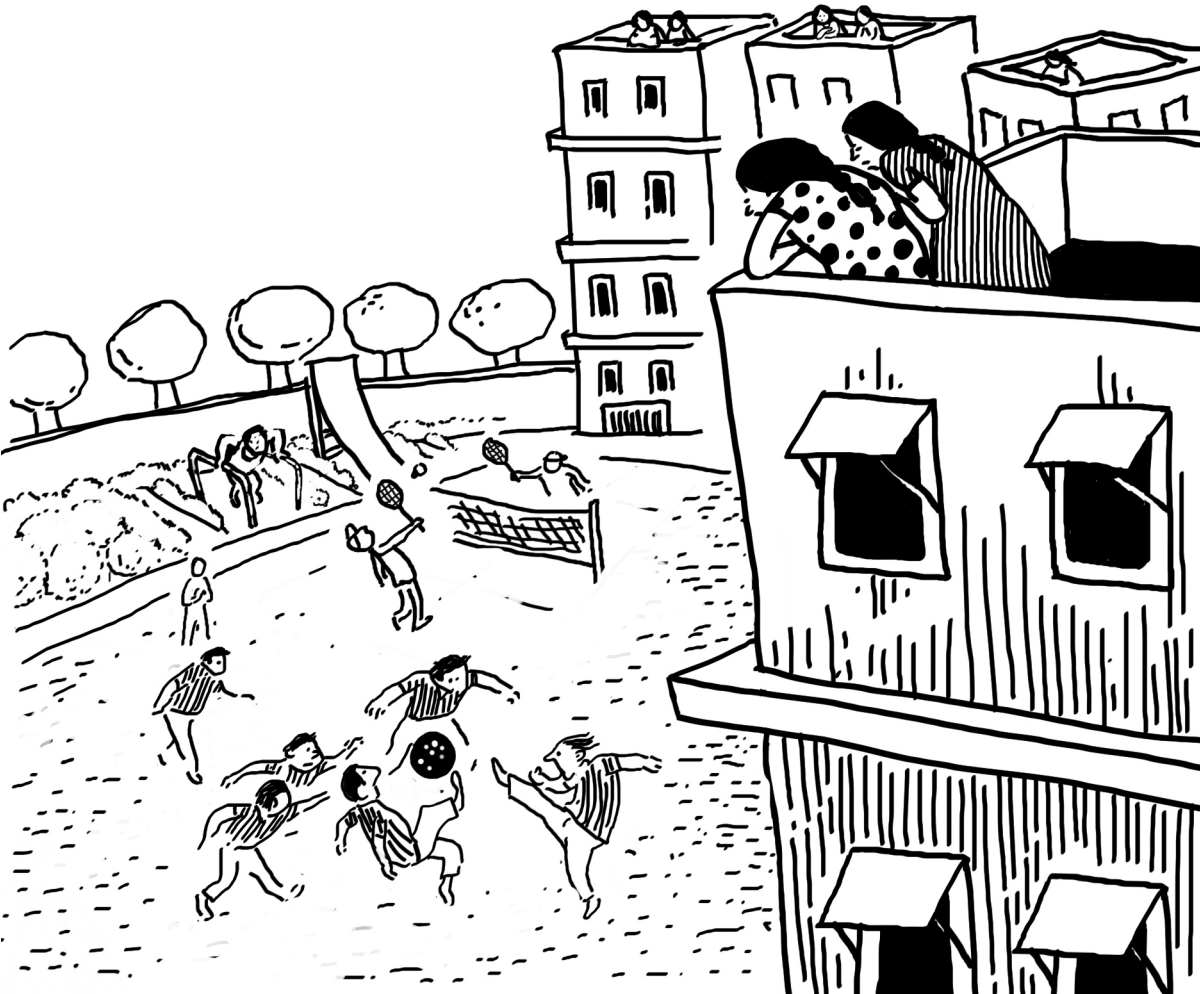

महाशय, *शादी के बाद पत्रकारिता क्यों छोड़ देती हैं ज्यादातर लड़कियाँ?*

लड़का और लड़की दोनों ने एक ही पढ़ाई की है। फ़ीस और पढ़ाई के दूसरे ख़र्च दोनों के बराबर हुए या लड़की के ज़्यादा ही हुए। नौकरी के लिए दोनों एक इम्तेहान में बैठे और पास कर गए। तनख़्वाह भी दोनों को मिल रही है। लेकिन जनाब यह कैसे होता है कि शादी करने की बारी आई तो लड़की वालों से दहेज़ के नाम पर पैसा लड़कों को चाहिए। शादी के लिए दहेज लड़कियों को ही देना पड़ता है। तर्क ये कि बेटा को बनाने में काफ़ी ख़र्च हो गया? और बेटी को बनाने में...?

महाशय, *शादी के बाद नौकरी छोड़ने की बारी आती है, तो लड़की ही क्यों छोड़ती है?*

क्यों एक लड़की की पढ़ाई खत्म होते ही उसकी शादी करने की जल्दी मच जाती है?

क्यों लड़की के पैदा होते ही, उसकी शादी की चिंता शुरू हो जाती है?

एक ही काम के लिए मर्दों को ज़्यादा और महिलाओं को कम पैसा क्यों मिलता है?

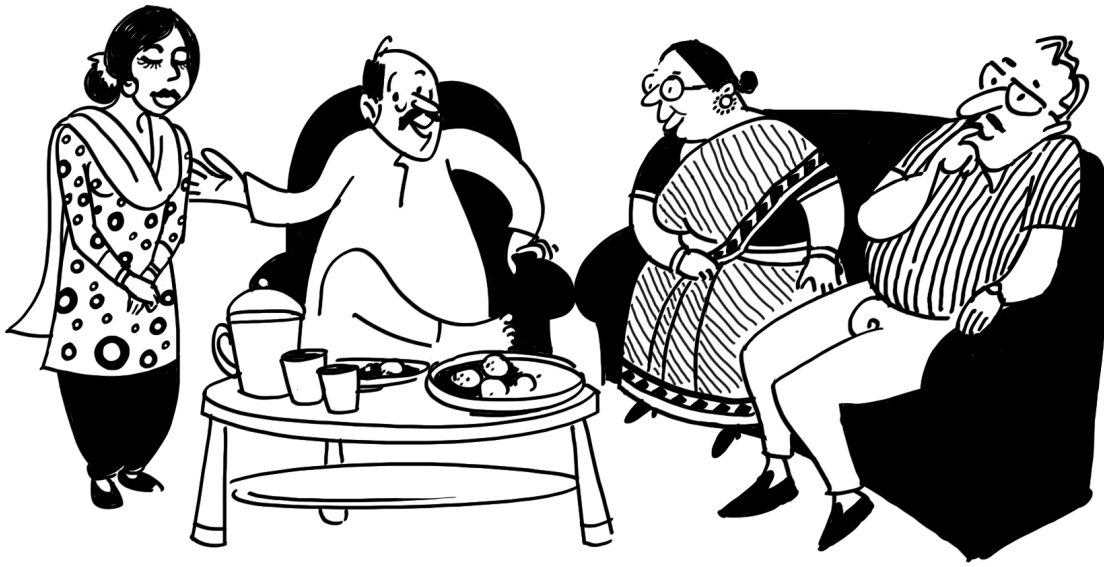

मर्द कहते हैं...

'... जब हम कह दिया है तो तबियत ठीक हो या न हो, मेरा काम हुआ है।'

'... जब हम चाहें तो वह भी चाहीं।'

'... बिस्तर पर हो या बाहर (पत्नी को) इस तरह माहौल बनाना चाहिए कि मर्द ख़ुश हो।'

'... ज़ोर ज़बरदस्ती तो करता ही है आदमी, पत्नी के साथ सम्बंध बनाने में।'

क्या मर्द इसी को कहते हैं? यही मर्दानगी है?

महिलाएँ कहती हैं...

'...हस्बेंड काफ़ी ज़ोर ज़बरदस्ती करते हैं।'

'...ज़बरदस्ती वाली चीज़ अच्छी नहीं होती। कोई हमें खाना ठूँस कर खिलाना चाहे तो क्या अच्छा लगेगा।'

'...मेरा पति तो सिर्फ़ हवस मिटाता है।'

क्या मर्द इसी को कहते हैं? यही मर्दानगी है?

(अलीगढ़ और लखनऊ की महिलाओं और पुरुषों से बातचीत के कुछ अंश)

...पर महाभारत कहता है,

'एक अत्याचारी नर को भी नारी के प्रति निष्ठुर नहीं होना चाहिए। याद रखो नारी पर ही इंद्रीय सुख, आनंद तथा नैतिकता निर्भर है। नारी उस पवित्र क्षेत्र के समान है जिसमें मानव का जन्म होता है। ऋषियों में भी इतनी शक्ति नहीं है कि वे बिना नारी के प्रजनन कर सकें।'

क्या आप के भीतर ऐसी मर्दानगी वास करती है?

मिस्र के मशहूर अल अज़हर विश्वविद्यालय के विद्वान डॉक्टर हामिद अबु तालिब बताते हैं, 'यौन सम्बंध में बीवी को शौहर जितना ही हक़ है। उसे इस बात का भी हक़ है कि वह तय कर सके कि उसे कब यौन सम्बंध बनाना है। मुस्लिम वैवाहिक क़रार पति-पत्नी के बीच यौन सम्बंध और उसके लुत्फ़ की इजाज़त देता है। यौन सम्बंध का लुत्फ़ पति-पत्नी दोनों के लिए है। न कि सिर्फ़ शौहर के लिए।'

क्या वाक़ई में स्त्री की भी कोई इच्छा होती है?
क्या आप यह ख़्याल रखते हैं?

जनाब ऐसा क्यों होता है?
आई आई एम-अहमदाबाद का एक अध्ययन बताता है कि नौकरीपेशा महिलाएँ जितना पढ़ी-लिखी क़ाबिल होती हैं, मर्दों के मुक़ाबले उनकी तनख़्वाह में उतना ही ज़्यादा भेदभाव होता है। यानी मर्दों के मुक़ाबले, महिलाओं को कम तनख़्वाह मिलती है। (संडे टाइम्स, दिल्ली, 3 नवम्बर 2013)

संतान *कब होने चाहिए- क्या यह फ़ैसला महिला करती है?*
नहीं तो क्यों नहीं?

संतान *कब-कब और कितने होने चाहिए,*
यह फ़ैसला पति रूपी जीव या उसके घर वाले क्यों करते हैं?

संतान महिला के कोख में पलता है।
तो संतान कब और कितने होंगे, यह फ़ैसला महिला क्यों नहीं करती?

महिला *की ख़्वाहिश के ख़िलाफ जिस्मानी रिश्ता क्यों बनाया जाता है?*

जिस्मानी रिश्ता बनाने में महिला साथी की ख़्वाहिश का ख़्याल क्यों नहीं रखा जाता? क्या महिला की कोई इच्छा नहीं होती?

जिस्मानी रिश्ता बनाने में साथी के साथ ज़बरदस्ती क्यों सही मानी जाती है?

क्या जिस्मानी रिश्ता बनाने की ख़्वाहिश महिला नहीं ज़ाहिर करती? अगर हाँ तो क्यों?

अगर कोई पुरुषों को ज़बरदस्ती खाना खिलाने चाहे, मुँह में ठूँसने लगे तो कैसा लगेगा?
फ़िर यौन सम्बंध बनाने में महिलाओं के साथ ज़ोर क्यों?

क्या महिलाओं को जिस्मानी तौर पर संतुष्ट नहीं किया जा सकता?

क्या महिलाओं को जिस्मानी रिश्ता बनाने का मन नहीं करता?

पुरुष नसबंदी क्यों नहीं कराते?

महिलाओं को ही ऑपरेशन क्यों कराना चाहिए?

मर्द कहते हैं, नसबंदी कराने से मर्दानगी कम हो जाती तो स्त्री ऑपरेशन कराए तो उसका कुछ नहीं जाएगा?

कहा जाता है कि पुरुष नसबंदी कराएगा तो कमज़ोरी आ जाएगी। महिला ऑपरेशन कराए तो क्या उसे कमज़ोरी नहीं आएगी?

गर्भ न ठहरे, इसका उपाय करने से मर्द क्यों कतराते हैं? कंडोम क्यों नहीं इस्तेमाल करना चाहते?

किसी महिला के गर्भ में लड़का होगा या लड़की- यह किससे तय होता है? यानी यह मर्द से तय होता है या स्त्री से?

किसी महिला के गर्भ में लड़का होगा या लड़की यह मर्द के शुक्राणु का क्रोमोसोम तय करता है। तब लड़की होने की यातना, महिला को क्यों दी जाती है?

महिलाएँ पति की लम्ब उम्र के लिए करवा या तीज का व्रत करती हैं। बेटे की सलामती के लिए जीतिया करती हैं। क्या पति भी पत्नी की दीर्घायु के लिए कोई व्रत करता है? क्या बेटियों की सलामती के लिए भी कोई व्रत किया जाता है?
अगर हाँ, तो उनके नाम बताएँ?
अगर नहीं, तो क्यों नहीं?

गांधी जी अहिंसा की बात करते थे। क्या गांधी जी मर्द नहीं थे?

क्या मर्द होने के लिए रोबीला, गुस्सैल, ताक़तवर... होना ज़रूरी है?

जिस मर्द कि आँख से आँसू निकल आते हैं, उसे कमज़ोर क्यों कहा जाता है?

क्या माँ-बाप के मरने का ग़म मर्द को नहीं होता? क्या दुःख -तकलीफ़ मर्द पर असर नहीं करते? क्या मर्द का दिल पत्थर का होता है? अगर आपका जवाब नहीं है, तो उसके आँख से निकले आँसुओं को नामर्दगी या कमज़ोरी से क्यों जोड़ा जाता है?

क्या मर्दानगी का मतलब हिंसक होना है? तो फिर हिंसक पशु और इंसान में फ़र्क़ बताइए जनाब।

अगर गायब होती रही बेटियाँ तो जिमाने के लिए कन्या कहाँ से आएगी?

अकेले रहने वाली या ज़िंदगी गुज़ारने वाली लड़की पर मर्दों/समाज की नज़र टेढ़ी क्यों रहती है?

मर्द अकेले रह सकता है। है न! तो लड़की अकेले ही क्यों नहीं रह सकती?

प्यार, प्यार से मिलता है या ज़ोर ज़बरदस्ती से?

प्यार, प्यार से मिलता है या मारपीट या धौंस से?

प्यार, प्यार से मिलता है या पहलवानी से?

सारी गालियों का रिश्ता माँ-बहन-बेटी से क्यों है?

भगवान बुद्ध, पैगम्बर ईसा मसीह, पैगम्बर हज़रत मुहम्मद, महात्मा गांधी, बाबा साहेब अम्बेडकर प्यार-अमन की बात करते हैं। ये मर्द हैं या नहीं?

जनाब ज़्यादातर शेफ यानी बड़े होटलों के ख़ानसामा मर्द ही क्यों होते हैं?
अगर महिलाएँ घर में अच्छा खाना बनाती हैं तो बड़े होटलों में क्यों नहीं बना सकतीं? वे शेफ, चीफ़ शेफ़ क्यों नहीं हो सकतीं?

पूड़ी छानती हैं, रसदार सब्ज़ी बनाती हैं, गोश्त बनाती हैं, न जाने अंडे का क्या-क्या बनाती हैं, करेले का भरवा, परवल की भुजिया, मटन का कोरमा, बिरयानी बनाती और उनके शामी कबाब के क्या कहने, लहसून की छौंकी अरहर दाल और बिना-प्याज-लहसुन के आलू की सब्जी तो बस भूख बढ़ा देती हैं। ये घरों में लड़कियाँ या महिलाएँ ही ज़्यादातर करती हैं। है न!
तो अंडा बेचते, मोमो बेचते, चाऊमीन बनाते, पूड़ी-सब्जी बेचते, ढाबों पर दाल फ्राई करते महिलाएँ या लड़कियाँ क्यों नहीं दिखतीं?

जो मर्द बाहर अंडा बेचते हैं, एग रोल बेचते हैं, शामी कबाब फ्राई करते हैं, बिरयानी में तह लगाते हैं, दाल फ्राई करते हैं, ताज़ी-ताज़ी रोटियाँ सेकते हैं... तो ये अपने घरों में भी खाना बनाते होंगे? क्यों?

मर्द बाहर होटलों-ढाबों- रेस्टोरेंट या दुकानों पर लोगों को खाना-खिलाते, पानी पिलाते हैं। तो ये मर्द घर में भी ख़ुद ही खाना बनाते होंगे? खाना निकालते होंगे? ...और सबसे बढ़कर पानी भी ख़ुद ही निकाल कर पीते होंगे? अगर जवाब हाँ है, तो बहुत अच्छा। अगर न है, तो घर में ऐसा क्यों नहीं करते?

घरों में झाड़ू-पोछा लगाने का काम महिलाएँ और लड़कियाँ करती हैं। घरों में ये काम उनके ही माने जाते हैं? ज़रा ग़ौर कीजिए और बताइए किस कारपोरेट दफ़्तर, यूनिवर्सिटी, कॉलेज में साफ-सफाई करने वाली सब ही महिलाएँ हैं?

सड़कों, बाजारों, मॉल में मेंहदी लगाते लड़के कितने अच्छे लगते हैं। कितना अच्छा मेंहदी लगाते हैं। है न। तो यह लड़के घर में भी अपनी बहन, माँ, भाभी, पत्नी को इसी तरह, इतने ही प्यार से मेंहदी लगाते होंगे?

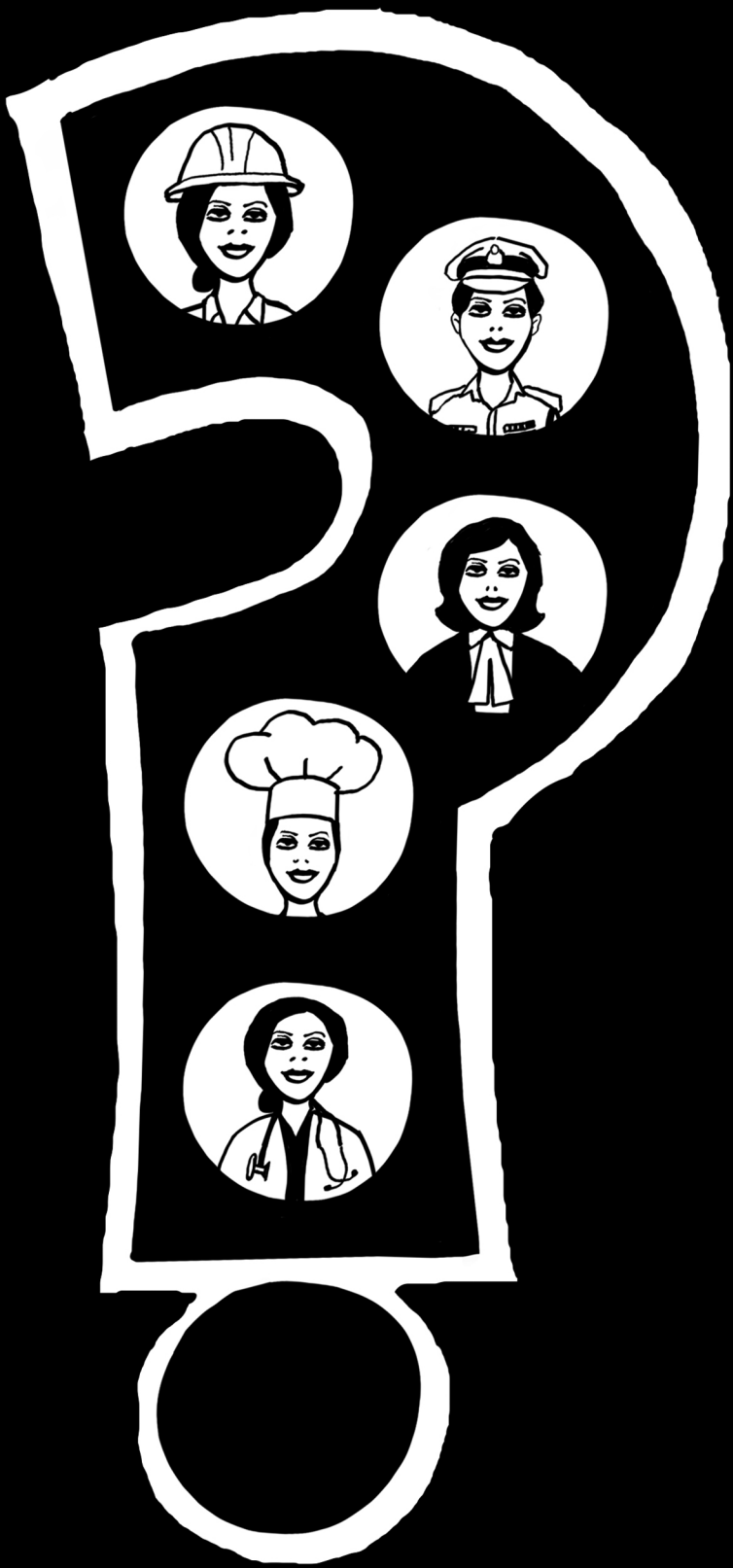

लड़की के बिना कैसी अद्‌भुत होगी दुनिया!

(ये कविता नहीं हैं। ये लाइनें कविता या कहानी समझ कर नहीं लिखीं गई हैं।)

एक.

ज़रा सोचो, कैसी होगी वह दुनिया
जहाँ दिन में भी काली रात का साया हो
उजाले का नामो निशान न हो
ज़रा सोचो, कैसी होगी वह दुनिया
जहाँ हर ओर जंग-जंग की गूँज हो
सुनाई न दे किसी कोने से अमन की सदा
ज़रा सोचो, कैसी होगी वह दुनिया
जहाँ सिर्फ स्याही की चादर हो
जिस पर कोई रंग न चढ़े
न दिखे कभी सतरंगा इंद्रधनुष
ज़रा सोचो, कैसी होगी वह दुनिया
जहाँ बाप तो हों पर माँ नहीं
बेटा तो हो पर बेटी नहीं
भाई तो हो पर बहन नहीं

भैया तो हो पर भाभी नहीं
नानी नहीं, दादी नहीं, चाची नहीं, खाला नहीं, बुआ नहीं
दोस्तों के झुंड हों पर सखी का साथ नहीं
ज़रा सोचो, कैसी होगी वह दुनिया
जहां पत्तों कार रंग सिर्फ़ ज़र्द हो
जहां बसंत में न दिखते हों सरसों के पीले फूल, पीली चूड़ियाँ
उड़ते न हों पीले दुपट्टे
ज़रा सोचो कैसी होगी वह दुनिया
जहाँ लड़के ही लड़के हों और दिखें न लड़कियाँ
यक़ीन करो ऐसी क्या,
इससे बदतर होगी दुनिया
जब न होने दोगे लड़कियाँ
जब न होंगी बेटियाँ, बहन
सखी, माँ, हफसफ़र
अगर चाहिए ज़र्द पत्तों का बन*
अगर चाहिए इकरंगी दुनिया
तो बेशक जैसी चल रही वैसी चलने दो दुनिया
तो बेशक न पैदा करो बेटियां, न पैदा होने दो बेटियाँ
फ़िर न कहना, कैसी थी, कैसी है, कैसी हो गई या कैसी होगी दुनिया
(फ़ैज़ की एक नज़्म में इस्तेमाल शब्द)

दो.
वंश चलाने के लिए
नाम ज़िंदा रखने के लिए
आपको चाहिए बेटा
जब बेटियाँ नहीं रहेंगी
तो वंश रहेगा न नाम ज़िंदा
नहीं पैदा होंगे बेटे
कोख नहीं रहेगा तो टेस्ट ट्यूब भी नहीं काम आएगा!

तीन.

सोचो अगर बेटियाँ न हों तो
होंगे मर्द-मर्द और मर्द
इधर मर्द, उधर मर्द
दाएँ मर्द, बाएँ मर्द
ऊपर मर्द, नीचे मर्द
बाँके मर्द, छबीले मर्द
गठीले मर्द, सजीले मर्द
घर में मर्द, बाजार में मर्द
मर्द ही मर्द...
पर ये भी ख़त्म हो जाएँगे
जब न होंगी बेटियाँ
और ख़त्म हो जाएगी तुम्हारी यह दुनिया भी

चार.

माँ, बेटी, बहू, बहन, सखी, सहेली, भाभी, चाची...
...
जब नहीं होंगी लड़कियाँ
तौ कौन और कैसे बता पाएगा
कैसी होती है माँ और उसकी ममता
सखी और उसकी आँचल की छाँव का मतलब क्या होता है
कैसा पता चलेगा गोद में सर रखने के बाद सारा तनाव हर लेती है सखी
कौन समझे, कौन समझाए, कौन दिमाग खपाए
तब शायद डिक्शनरी से निकालने भी पड़े ये शब्द
शायद यही बेहतर होगा
वरना ये सवाल भी कोई पूछ सकता है
आख़िर कैसी होती थी बहन, चाची, बुआ, सखी और सबसे बढ़कर माँ
आखिर कैसे गायब हो गईं लड़कियाँ?

किसी को भैंस चाहिए
तो किसी को स्कूटर और कलर टीवी भी
फ्रिज है तो माइक्रोवेव ओवन चाहिए
अपना फ्लैट भी होना चाहिए
क्यों?
दुकान के लिए पगड़ी मिल जाती
तो क्या कहने
और जिंदगी शुरू करने के लिए
थोड़ा कैश
नहीं?
.....
अगर नहीं मिला?
तो नहीं रहेगी
'सुंदर-सुशील-संस्कारी' बहू!

बारात के लिए बस चाहिए, साथ में
बैंड-बाजा भी
रिसेप्शन के लिए पैसा भी
और सामान क्या देंगे, कैश ही दे दीजिए
आपकी बेटी है, अपनी पसंद से घर
सजाएगी
और नहीं दिया तो
तो क्या...
झेलेगी आपकी दुलारी
ताना सुनेगी आपकी आँखों की तारा
और सहती रही तो शहीद भी हो सकती
है आपकी कलेजे का टुकड़ा

जी हाँ
बेटा है आपका
पगड़ी आपकी सलामत
बेटा पैदा करने की पूरी
कीमत वसूलेंगे आप
माँगेंगे दहेज और कहेंगे
'बेटी है आपकी
जो है उसी का है'
कम लाई तो ताना देंगे
मारेंगे...
सच है कि बेटा ही है आपका
बेटी का बोझ, न खौफ।
पर क्या गारण्टी इसकी
पोती नहीं होगी आपको...

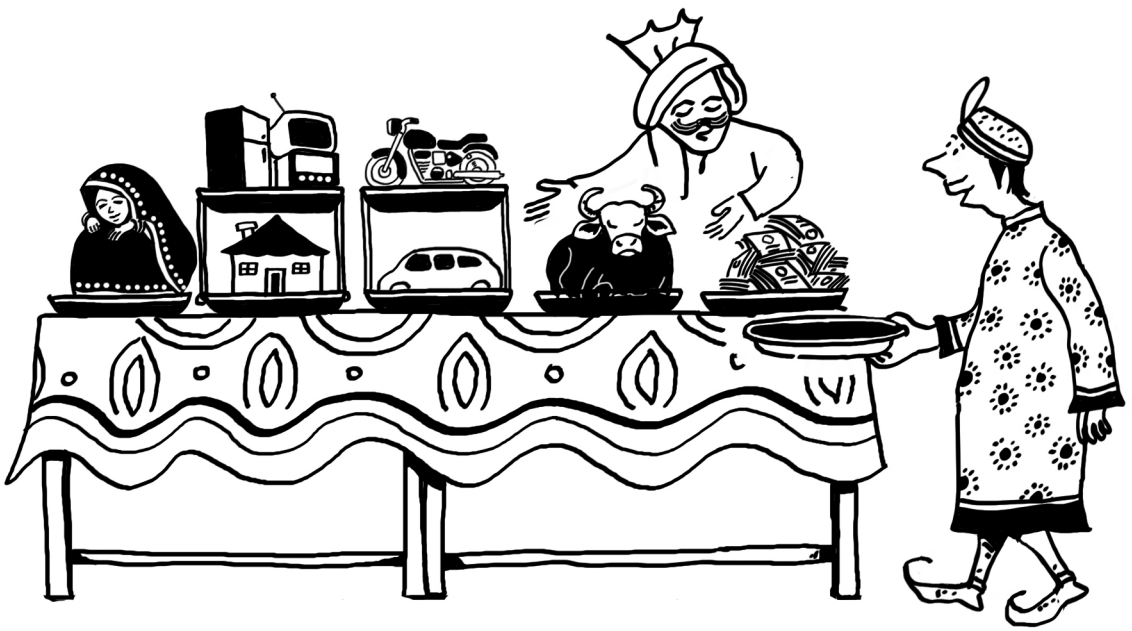

पाँच.
पढ़ेगी नहीं
तो समझेगी कैसे
हुए क्यों
हालात बदतर !!
पढ़ेगी नहीं
तो बदलेगी कैसे
लड़ेगी कैसे
जीतेगी कैसे !! !

छह.
बेटी
पढ़ेगी
तो समझेगी
बनेगी।
फिर बदलेगी
अपनी ज़िंदगी।

सात.
लड़कियों की शाम
इनकी कैसी साँझ?
इनकी जिंदगी में तो
हर वक्त है साँझ का धुँधलका
साँझ का क्यों रहे इन्हें इंतज़ार
क्या करें इस वेला में, यही सवाल लेकर आती है हर शाम
काश इस साँझ में ये भी करें ता–थया
उछलें–कूदें, मचाएँ धमाल
पर कहाँ हैं ये शाम
कोई इनके दिल से पूछे
ये तो चाहती जितनी दूर हो साँझ
उतना ही हो अच्छा

पर बिना शाम गुज़रे
नई सुबह भी तो नहीं आती
इसलिए गुज़ारनी होगी शाम हौसले से
लड़ना होगा अँधेरे से ताकि कदम बढ़े
एक नई सुबह की ओर

आठ.
अकड़ते हो
घमंड में चूर
नहीं थकते शेखी बघारते
अपने को 'मर्द' कहते हो
पर बड़े बेशर्म हो भई।
बुरा क्यों लग रहा?
भैंस/स्कूटर/ कलर टीवी
या फिर चंद पैसों के लिए
हिचकते नहीं
मारने से संगनी को!

नौ.
तुम पूछते हो
सहती है क्यों औरत?
जवाब क्यों नहीं देती?
तीन 'प' के साए में है उसकी ज़िंदगी
यह तो आपने ही बताया
''पिता-पति-पुत्र ही हैं स्त्री के रक्षक
बाप-शौहर-बेटा है निगहबान इसका
खानदान का नाम चलाता है बेटा
बोझ की खान है बेटियाँ
मर्द कमाता है, खिलाता है, लाता है पैसा
लाठी है बुढ़ापे की
इसीलिए दर्जा भी ऊँचा है उसका

.... और फिर औरत
दिमाग से कमतर
हैसियत से कमतर
भोग की वस्तु है
कहाँ मर्द- कहाँ औरत''
तुमने रचे शास्त्र, मजहबी क़ानून, गढ़े नियम, बनाई मर्यादाओं की घेराबंदी
जवाब तुम्हारे ही पास है
कैसा क्रूर मज़ाक
फिर भी करते हो सवाल
सहती है क्यों औरत?

दस.
हमला किसी मुल्क पर हो
या देह पर
बर्बादी तो होती है
फर्क इतना है
बर्बादी की ढेर से
उठ खड़ा होता है मुल्क
लेकिन देह...
देह के साथ
मन भी होता है घायल
रूह भी कहीं कैद हो जाती है
देह की चोट फिर भी भर जाती है
घायल मन
हर रोज याद दिलाते हैं
यहीं कहीं
टहल रहा है
हमलावर
एक और मौके की तलाश में
हम भी कहाँ मानते
याद दिलाते रहते हैं उसे

घायल हो तुम, अधूरी हो तुम, चेहरा दिखाने लायक नहीं हो तुम
पर कई बार राख के ढेर से भी खड़ा हो उठता है कोई
(कवि-पत्रकार रघुवीर सहाय ने एक जगह लिखा है-औरत की देह औरत का देश होता है। उसी को ध्यान में रखकर ये चंद लाइनें लिखी गईं हैं।)

ग्यारह.
थोड़ी सी जलन
छोटा सा फफोला
मामूली सा दर्द
मुश्किल से बर्दाश्त कर पाते हैं हम
.....
आँखों में सँजोए ढेरो ख़्वाब
हाथों-पैरों में रची मेंहदी
भर हाथ चूड़ी पहने
सोलह सिंगार किए
बाबुल का घर छोड़
पिया का घर बसाने आई
सुंदर-सुशील-संस्कारी दुल्हन
.....
और हमारी हिम्मत तो देखिए
पूरी की पूरी जवान दुल्हन...
हृष्ट-पुष्ट दुल्हन
बस यों छिड़का तेल
या खोली गैस
और लगाई माचिस
और दे दी मुक्ति...
पा ली मुक्ति... न जलन... न दर्द...
वैसे लटका भी सकते हैं
है न्।
और फिर निकल पड़े
जवान-सुंदर-सुशील, धन-धान्य से भरपूर
नई दुल्हन की तलाश में

द्वंद्व में लिपटी लड़कियों की ज़िंदगी

शब्दकोश में द्वंद्व के कई मायने हैं। जैसे- दुविधा, ऊहापोह, उलझन, झंझट, टकराव, विरोधी आवेगों, इच्छाओं और प्रवृतियों का एक साथ क्रियाशील होना। ये सारे शब्द अलग-अलग छोर के बीच झूलते इंसान की हालत बयान करते हैं।

ग़ौर करें तो ये सारे शब्द लड़कियों/महिलाओं की ज़िंदगी से सीधे वाबस्ता हैं। उनके 'गार्जियन' यानी माँ-बाप-भाई-दोस्त और अगर शादी की तो बाद में चलकर पति और ससुरालियों के साथ भी जुड़े हैं। या यों कहें इन शब्दों के बिना लड़कियों की ज़िंदगी समझी नहीं जा सकती है।

- ऐसा नहीं है कि मर्दों की ज़िंदगी में द्वंद्व शब्द की जगह नहीं है। जगह है लेकिन रोज़ाना नहीं। हर घंटे और हर पल नहीं। मगर लड़कियों की ज़िंदगी से द्वंद्व ऐसे चिपका रहता है, जैसे बदन से जोंक।

- द्वंद्व हमेशा महिलाओं के साथ रहा है। पारिवारिक और सामाजिक बंदिशें उसके लिए ही रही हैं और दायरे भी उसके लिए बनाए गए हैं। बंदिशें और दायरे द्वंद्व का घेरा मज़बूत करते हैं।

बंदिशों का पालन करने और दायरे में ही रहने का द्वंद्व लड़की के साथ हमेशा चलता रहता है।

हर वक्त दायरे के टूट जाने का डर और द्वंद्व हावी रहता है।

जो जितना आज़ाद ज़िंदगी जीने की कोशिश की करता है, उसका द्वंद्व उतना ही ज़्यादा होता है।

गर्भ में आकार लेते भ्रूण के साथ माँ-बाप-दादा-दादी की जिज्ञासा शुरू होती है- लड़का है या लड़की? द्वंद्व की शुरुआत होती है- लड़का होगा या लड़की होगी? क्या होगा?

लिंग स्त्री है तो द्वंद्व शुरू- पैदा होने दें या नहीं? आमतौर पर गार्जियन के द्वंद्व से जो फ़ैसला उपजता, वह लड़की के ख़िलाफ़ जाता है।

जिन्होंने बेटी पैदा होने दी, उनका द्वंद्व कुछ यों शुरू हो जाता है- पालेंगे कैसे? दुनिया की नज़रों से बचाएँगे कैसे? ब्याह कैसे करेंगे? दहेज के लिए पैसा कहाँ से आएगा?

बड़ी होने लगी- तो पहनाएँ क्या, ओढ़ाए क्या? कैसे और कहाँ पढ़ाएँ? बाहर किसके साथ भेजें? देर तक बाहर क्यों रह गई? ज़माना क्या कहेगा? पड़ोसी क्या कहेंगे?

पढ़ने में अच्छी तो एक अलग द्वंद्व- ज़्यादा पढ़ गई तो उसके मुताबिक अपनी जाति-मज़हब का लड़का कहाँ से लाएँगे? लड़का अगर उसी की तरह क़ाबिल मिल गया तो दहेज़ के लिए पैसा कहाँ से आएगा?

अंटी में दाम नहीं, इसलिए लड़की के गुणों के मुताबिक नहीं, माँ-बाप के पैसे के मुताबिक लड़के की तलाश का द्वंद्व। क़िस्मत और ज़िंदगी की हक़ीक़त के बीच का द्वंद्व। हक़ीक़त तो यह है कि लड़की की क़ाबिलियत के मुताबिक लड़का नहीं फ़िर भी नियति का खेल मानकर सब कुछ मान लेने की कोशिश और ताउम्र इस द्वंद्व से उबरने का प्रयास।

वह भी इंसान है, इसलिए कुछ करने की ख़्वाहिश और करें कैसे- इसका द्वंद्व।

कुछ अपने मन का करने का द्वंद्व।

कुछ अलग करने का द्वंद्व।

करेंगे तो क्या होगा? नहीं करेंगे तो क्या होगा?

यह करेंगे तो लोग क्या कहेंगे? क्या सोचेंगे? समाज क्या कहेगा? पापा क्या सोचेंगे? भैया को कैसा लगेगा? माँ कहीं नाराज़ तो नहीं होगी?

अगर किसी काम के लिए न कर दिया तो क्या होगा?

कुछ करना चाहती हैं पर करेंगे तो क्या होगा?

देर रात किसी लड़के से बात करने न करने का द्वंद्व?

घर में किसी लड़के की बात न करने का द्वंद्व?

कुछ न कर पाने का द्वंद्व।

अगर कोई लड़का दोस्त हुआ तो उसके साथ सरे राह चलने और न चलने का द्वंद्व। उसके साथ रेस्तराँ में चाय पीएँ कि न पीएँ?

सबके सामने किसी लड़के के बगल में कैसे बैठें? भले ही वह लड़का कितना ही भला क्यों न लगता हो?

लड़कों के साथ कैसे खेलें?

लड़के की दोस्ती का मतलब एक ही होता है-उससे इतर दोस्ती न कर पाने का द्वंद्व।

लड़के से दोस्ती का मतलब प्रेम या प्रेमी नहीं होता- यह समझा न पाने का द्वंद्व।

घर और बाहर विश्वास और अविश्वास के बीच झूलती निजी ज़िंदगी।

हर रोज़ 'विश्वास' का विश्वास दिलाते रहने का द्वंद्व।

हर रोज़ 'विश्वास' के पैमान पर ख़रा उतरने का द्वंद्व।

सरेआम खुलकर हँसने का द्वंद्व।

अगर कोई लड़का दोस्त हुआ तो घर बुलाने और न बुलाने का द्वंद्व।

महिलाओं का द्वंद्व तब और बढ़ जाता है, जब उन्हें घर की चहारदीवारी से बाहर कदम रखना पड़ता है।

इस द्वंद्व की कई वजह हैं-किसी परिवार, समाज या देश की परम्परा, संस्कृति और धर्म का वाहक महिलाओं को माना जाता है। इन पर ही परम्परा और संस्कृति को बचाने या ढोने का वज़न समाज ने डाल दिया है। इस वज़न को ढोने का द्वंद्व। इस भार को सम्हालने का द्वंद्व।

महिलाओं को परिवार, समाज या देश की इज़्ज़त का प्रतीक भी माना गया है। इसीलिए साम्प्रदायिक और जातीय हिंसा में ये यौन हिंसा झेलती हैं। समुदाय की 'इज़्ज़त' तार-तार करने का मैदान इनका शरीर बनता है। इस 'इज़्ज़त' को बचाए रखने का द्वंद्व। कुछ ऐसा न हो कि 'इज़्ज़त' चली जाए- इसका द्वंद्व।

आधुनिकता कई सारी परम्पराओं और रीति-रिवाज़ों का निषेध भी है। कई सारे मूल्यों को तोड़ने और नए मूल्यों का आत्मसात भी है। कई सारे नए मूल्यों को गढ़ने का नाम भी है। आधुनिकता-परम्परा-संस्कृति-धर्म-रीति-रिवाज़ों-मूल्यों के बीच झूलती स्त्री मन द्वंद्व।

स्त्री के लिए परम्परा और रीति-रिवाज़ का निषेध आसानी से गले नहीं उतरता। दक़ियानूसी मूल्यों को तोड़ना भी उसके लिए पहाड़ तोड़ने जैसा है। नए मूल्यों को आत्मसात करने में भी कई बार पीढ़ी लग जाती है। अपना द्वंद्व वह कई बार अपनी आने वाली पीढ़ी में डालती है। वह करना चाहती है, पर करे तो कैसे?

आधुनिक स्त्री, जो घर की चहारदीवारी के बाहर अपने आपको साबित करना चाहती है या

साबित कर रही है, उसे घर के अंदर अच्छी बेटी, अच्छी माँ, अच्छी संस्कारी बहू, पत्नी और घर के बाहर हमेशा अच्छी महिला साबित करने का दबाव रहता है... परम्परा या संस्कृति या रीति-रिवाज़ों से आधुनिक स्त्री का द्वंद्व के साथ ही इनसे टकराव आज के समय में सबसे ज्यादा है।

आज के वक्त में एक स्त्री को कुछ करने के लिए कई स्तर पर बुरी बनना पड़ता है। उसे घर, परिवार और समाज की बुराई मोल लेनी पड़ती है।

स्त्री जीवन का बड़ा मक़सद शादी पर आकर टिक जाता है। उसकी पैदाइश से ही शादी उसके साथ चिपक जाती है। इससे इतर सोचने वाली या शादी को तवज्जो न देने वाली या शादी को अपनी पसंद का बनाने वाली लड़कियों की ज़िंदगी एक अलग तरह के द्वंद्व से गुज़रती है।

जिन लड़कियों के माँ-बाप ने उन्हें पढ़ने-लिखने की छूट दी या बाहर आने-जाने से उन्हें बहुत रोका नहीं या जो उनकी ज़्यादातर बात मानते आए हैं, उनका अलग तरह का द्वंद्व है। उन्हें लगता है कि चूँकि ज़्यादातर लड़कियों को ये सारे मौक़े नहीं मिलते, इसलिए उनके माँ-बाप ने उनके लिए बड़ा काम किया है। इसलिए उनकी इच्छाओं को कैसे न पूरा करें? माँ-बाप को किसी चीज़ के लिए मना कैसे करें? अक्सर यह द्वंद्व शादी और काम के लिए होता है। वे सोचती हैं कि माँ-बाप अगर शादी कर रहे हैं तो वे मेरा बुरा थोड़े ही चाहेंगे? अगर मैंने मना किया या अपनी पसंद के बारे में ज़ोर डाला तो उन्हें कितना बुरा लगेगा? उन्होंने मेरे लिए इतना किया है, अगर मैं अपनी पसंद पर ज़ोर न दूँ तो उन्हें कितनी ख़ुशी होगी?

लड़की की पढ़ाई ख़त्म हो गई। वह कुछ करना चाहती है। कुछ काम। कुछ नौकरी। कैसे करे... कहाँ जाए। किससे कहे। आगे के बारे में कैसे तय करे। घर में तो सबकी बस एक ही रट या फ़िक्र है- शादी। शादी के बाद का द्वंद्व- क्या... कैसे होगा?

शादी हो गई पर आगे क्या करें?

बच्चे हो गए- नौकरी करेगी तो उनकी देखभाल कौन करेगा? बच्चे को किसी आया या किसी और पर छोड़ कर गई तो बुरी अम्मी कहलाएगी? कॅरियरिस्ट कहलाएगी।

अच्छी बहन, बेटी, पत्नी, माँ साबित करने का द्वंद्व।

आज का वक़्त पहचान और अस्मिताओं का भी दौर है- धार्मिक, क्षेत्रीय, भाषाई, जातीय पहचान काफी तेजी से सामने आई है। कई बार यह पहचान उस पर थोप भी दी जाती है। जैसे- मुसलमान या दलित महिला। उसके लिए सिर्फ स्त्री बनकर पहचान बनाना आसान नहीं है। कई पहचान को एक साथ जीने का द्वंद्व स्त्री के साथ सबसे ज़्यादा है। यह कई पहचान, उसके लिए जी का जंजाल भी बनता है। इन पहचान को ढोने का दारोमदार भी स्त्री पर ही होता है। महिलाओं की दोयम दर्जे की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक स्थिति भी उनके द्वंद्व को बढ़ाती है।

मन पसंद करता है किसी को। दिल किसी के बिना बेचैन रहता है। सारी ज़िंदगी किसी ख़ास के साथ गुज़ारने की ख़्वाहिश हिलोरे मारती हैं? पर कहें किससे? कहें कैसे? पिता जी क्या सोचेंगे? अब्बा ने मुझ पर कितना यक़ीन किया था? मैंने उनका भरोसा तोड़ दिया? लोग ताने देंगे? कहीं घर वालों को छोड़ना पड़ा? बुआ-ममानी क्या कहेंगी? सब बुरा कहेंगे? कहीं कुछ उलट हो गया तो?

उनकी पूरी ज़िंदगी हाँ या न के बीच झूलती है।

कभी हाँ को ग़लत माना जाता है तो कभी न को संस्कार के खिलाफ।

ऐसी झूलती ज़िंदगी से उबरने का ख़तरा कितनी ले पाती हैं?

क्या ऐसे द्वंद्व पुरुषों की जिंदगी में होते हैं?

अगर हाँ तो ऐसे कितने द्वंद्व आप गिना सकते हैं, उन्हें बगल में सादे काग़ज पर लिख डालिए?

अगर जवाब नहीं है, तो बताइए ऐसे द्वंद्व लड़कियों या महिलाओं के साथ ही क्यों?

क्या इस द्वंद्व, दुविधा, दिमागी बंधन से आज़ाद कराने की ज़िम्मेदारी मर्दानगी का हिस्सा नहीं है?

ख़ुशनुमा ज़िंदगी के लिए ज़रूरी है कि लड़कियों को ऐसे ढेर सारे द्वंद्व से मुक्त करने में मदद करें।

कौन कहता है लड़कियों के साथ भेदभाव हो रहा?

मददगार किताबें–

थेरीगाथा, अनुवाद- भरत सिंह उपाध्याय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967

एक अज्ञात हिन्दू औरत- सीमन्तनी उपदेश, सम्पादक- डॉ.धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

महादेवी वर्मा– शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद

सुब्रह्मण्य भारती–भारती की ललित रचनाएं- सम्पादक- पेरियस्वामि तूरन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 1996

मौलवी सैसद मुमताज़ अली– हुक़ूक़े निस्वाँ, मत्बा' रिफ़ाह आम, लाहौर, 1898

रशीद जहाँ– वह तथा अन्य कहानियाँ और नाटक, शब्दकार, दिल्ली, 1976

हम अपनी बात यहाँ लिख सकते हैं

आज सामाजिक न्याय कि परिकल्पना में एक ऐसी दुनिया की कल्पना की जा रही है जहां हर महिला पुरुष व अन्य को भेदभाव व हिंसा रहित तथा पूर्ण गरिमा के साथ जीने का हक हो। इस सपने को साकार करने के लिए नए सामाजिक मानदण्डों को बनाना होगा जो समता, न्याय व बराबरी पर आधारित हो।

उक्त सामाजिक मानदण्डों को बनाने तथा इसे व्यवहार में लाने के लिए सभी लोगों के साथ तथा विशेष रूप से किशोरों व युवाओं के साथ काम करने की जरूरत पड़ेगी।

जेण्डर समानता तथा न्याय जैसे जटिल मुद्दे पर किशोरों व युवाओं के साथ काम करने के लिए ऐसी सामग्री की जरूरत पड़ती है जो सरल हो तथा रोचक हो। ***कौन कहता है लड़कियों के साथ भेदभाव हो रहा*** किताब हमारी इस जरूरत को पूरी करती है तथा उम्मीद ही नहीं बल्कि पूरा विश्वास है कि जेण्डर समानता व न्याय के सपने को किशोरों व युवाओं के साथ आगे बढ़ाने के लिए मददगार होगी।

सतीश कुमार सिंह, अतिरिक्त निदेशक, सी.एच.एस.जे

नासिरूद्दीन पेशे से पत्रकार हैं और सामाजिक मुद्दों पर लिखते हैं। बतौर कार्यकर्ता वे सामाजिक और खासकर महिला आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। इन्हें मीडिया से जुड़ी कई फेलोशिप मिली है जिनके तहत कई शोधपरक काम किए हैं। कई सामाजिक व सांस्कृतिक संगठनों से भी इनका जुड़ाव रहा है। जेण्डर समानता की मुहिम में पुरुषों की भागीदारी के लिए चलने वाले प्रयासों में भी अरसे से जुड़े हैं। इनका लेखन www.genderjihad.in पर भी देखा जा सकता है।

ईमेलः nasiruddinhk@gmail.com